मन, उस पर पड़े संस्कार व स्वभाव

हम हिन्दुओं के १६ संस्कारों के विषय में जानते हैं। ये संस्कार एक हिंदू के जीवन में उसके माता-पिता द्वारा उसके जन्म के आह्वान से आरम्भ हो कर उसकी मृत्यु तक जीवन-चरण की महत्ता को ध्यान में रख कर उचित समय पर किए जाते हैं। इन संस्कारों को विधि-विधान से करने का मुख्य कारण मनुष्य के मन पर पड़े बुरे भावों को दूर करना है ताकि एक अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण हो सके। मन पर पड़े इन बुरे भावों (छापों अथवा संस्कारों) को हटाना अत्यंत अनिवार्य है क्योंकि ये छापें व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करती हैं और उसकी आदतों और काम करने के तरीके को परिभाषित करती हैं। व्यक्ति के मन पर पड़ी ये छापें व्यक्ति के स्वभाव को दर्शाती हैं। हमारे ऋषि-मुनियों ने एक भले व समृद्ध समाज की परिकल्पना की थी जिसके लिए उन्होंने सामाजिक व व्यक्तिगत नियम सुझाए थे। संस्कारों का विधान व्यक्ति को समाज में अपने योगदान व सामाजिक नियमों के पालन में सक्षम बनाने हेतु था। समाज में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति जो समाज से मात्र लेने के स्थान पर समाज में योगदान देना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझता है न केवल समाज को अपितु स्वयं को भी समृद्ध करता है।

ऐसा क्यों है कि किसी भी कृत्य की, इच्छा की छाप मन पर पड़ती है, आत्मा पर नही। यह समझने के लिए हमें यह जानना होगा कि हमारे शरीर मे १७ तत्त्व है जिनके मिलने से आत्मा का 'सूक्ष्म शरीर' बनता है। ये १७ तत्त्व है:

- ५ ज्ञानेन्द्रियाँ (जीभ, त्वचा, आँख, नाक व कान),
- ५ कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, मुंह, गुदा और लिंग (जननेन्द्रिय)),
- ५ प्राण,
- मन व
- बुद्धि

आत्मा का 'सूक्ष्म शरीर' भौतिक शरीर के नष्ट (मृत्यु) हो जाने के पश्चात भी सदैव आत्मा के साथ रहता है। अर्थात मन व बुद्धि मृत्यु के पश्चात भी आत्मा का साथ नहीं छोड़ते और नए जन्म में भी साथ ही होते हैं।

मन आत्मा का सेवक है और बुद्धि मन की परामर्शदाता। आत्मा को प्रसन्न करने के उद्देश्य से मन नित नए-नए विचार (भाव, इच्छाएं) उत्पन्न करता रहता है। बुद्धि मन की परामर्शदाता होने से मन के प्रत्येक विचार पर अपनी प्रतिक्रिया प्रदान करती है और विचार को क्रिया में बदलने या उसे त्यागने का सुझाव देती है। मन में उत्पन्न होने वाले विचार मन पर पड़ी हुई छापों पर अत्यधिक निर्भर होते हैं क्योंकि ये छापें ही भावों (विचारों) के संग्रह के रूप में मन को लगातार प्रभावित करती हैं। इन विचारों के प्रभाव में मन बुद्धि को उन्हें स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता रहता है ताकि आत्मा को प्रसन्न करने के लिए उन्हें कार्य रूप में क्रियान्वित किया जा सके। यदि कोई भाव मनुष्य की बुद्धि के अनुसार मनुष्य के लिए लाभकारी अथवा सुख उपजाने वाला होता है तो बुद्धि उस विचार को सही मानती है और मन को अपनी स्वीकृति देती है। तब मनुष्य का मन इन्द्रियों द्वारा उस भाव को कार्य-रूप देता है। मनुष्य का इन्द्रियों द्वारा भाव को कार्य-रूप देना मनुष्य का कर्म करना है। व्यक्ति की बुद्धि कितनी विकसित है, यह परिभाषित करती है कि बुद्धि किन विचारों को क्रियान्वित करने का परामर्श देगी और किस प्रकार के विचारों को वह अस्वीकार कर त्यागने का आग्रह करेगी।

मन सदैव भौतिक पदार्थों की ओर आकर्षित होता है और मानता है कि ये आकर्षण आत्मा को प्रसन्न करेंगे। मन निरंतर प्रयास करता है कि बुद्धि उसके प्रस्तावों को स्वीकार करे। यदि बुद्धि किसी विचार को अस्वीकार करती है और मन को उस विचार को त्यागने का सुझाव देती है तो मन उस विचार को सदा के लिए नहीं त्याग देता अपितु उसे कुछ समय के लिए दूर करता है और समय बीतने के पश्चात उसे पुन: बुद्धि के पास विचार करने के लिए भेजता है कि बुद्धि उसे स्वीकार कर ले और मन फिर इन्द्रियों को आदेश दे कर उस विचार को कार्यरूप दे देवे। बुद्धि के बारम्बार एक ही विचार को अस्वीकार करने पर भी मन उसी विचार को पुन: बुद्धि को स्वीकृति हेतु भेजने से नहीं रुकता। मन एक हठी बालक की भाँति जो अपने माता-पिता से निरंतर हठ करता रहता है कि माता-पिता उसका हठ पूरा कर दें, जैसा आचरण करता है। मन आत्मा को प्रसन्न करने हेतु इन इच्छाओं की पूर्ति चाहता है। यदि इन इच्छाओं को पूरा नहीं किया गया तो इच्छाओं की अपूर्ति के कारण मनुष्य को दुख होगा ऐसा आभास कराने का भी वह प्रयास करता रहता है। यदि इच्छा की पूर्ति न हुई तो हमें दुख होगा अत: इस दुख से बचने के लिए हम इच्छा पूरी करने का प्रयास करते हैं,

Mind, Sanskār and Swabhāv

We know about the 16 sanskārs of Hindus. These rites are performed in the life of a Hindu starting from the time when parents decide to have a child till his death. These sanskār (rituals) are performed at appropriate time during the different phases of life. The main objective of performing these sanskārs is to remove the bad impressions from the mind of a person so that a good personality can be developed. It is important to rid the mind from these bad impressions as they form the character of a person, define his habits and way of doing things. These impressions reflect the nature of that person. Our sages had envisaged a prosperous society for which they suggested social and personal norms and rules. The system of the sanskār was to enable an individual to contribute to the society and to follow the social norms. Every person living in the society, who considers his contribution towards it as his duty and values it more than just taking from the society, not only enriches it but also himself.

Why is it that the impressions of any action or desires fall only on the mind and not on the soul. To understand this, we have to know that there are 17 elements in our body which make the 'sukśm śharīr' (subtle body) of the soul. These 17 elements are:

- 5 gyānendriy (tongue, skin, eyes, nose and ears),
- 5 karmendriy (hands, feet, mouth, anus and genitals),
- 5 prān,
- mind and
- intellect

The sukśm śharīr' of the soul remains with the soul forever even after the physical body is destroyed (death). The mind and intellect remain with soul even after death, and in the new birth too.

The mind is the servant of the soul and the intellect is the counselor of the mind. In order to please the soul, the mind constantly generates new thoughts (feelings, desires). The intellect being the counselor of the mind provides its feedback on each and every thought of the mind and suggests to either convert the thought into action or discard it. The thoughts arising in the mind are highly influenced by the impressions already on the mind because these are a collection of feelings and thoughts which affect the mind continuously. The mind continues to inspire the intellect under the influence of these thoughts to accept them so that they can be put into action to please the soul. In case the intellect of a person finds a thought as beneficial or producing happiness for the person, the intellect accepts it as correct and gives its approval to the mind. Then the mind gets the thought converted into action through 'indriy' (gyānendriy or karmendriy). This conversion of thought into action is called 'karm'. How developed is a person's intellect defines the type of thoughts it will advise to implement or the type of thoughts it will reject and insist on discarding.

The mind is always attracted to materialistic subjects and believes that these will please the soul. The mind constantly tries to make the intellect accept its proposals. If the intellect rejects a thought and suggests the mind to discard it, then the mind retains it and sends it again to intellect for consideration. Even after repeated rejections of the same thought by the intellect, the mind does not refrain from sending the particular thought again to the intellect for approval. The mind behaves like an obstinate child who keeps insisting on his parents that they should fulfill his obstinacy. The mind keeps reminding the intellect that non-fulfillment of desires would result in sufferings for the person. To avoid this misery, we try to fulfill the desire; we do 'karm'. The purpose of doing our 'karm' is to protect us from suffering and we always expect that our 'karm' will fulfill our desire and we will not suffer. *(see: Hum Naa Bhooleen-13)*

www.humnaabhooleen.com

कर्म करते हैं। हमारा कर्म करने का उद्देश्य दुख से रक्षा होता है और सदा अपेक्षा होती है कि हमारे कर्म से इच्छा पूरी होगी और हमें दुख नहीं होगा। *(देखें: हम न भूलें-13)*

जब कभी भी मन एक ही प्रकार के विचार बुद्धि को अनुमोदन के लिए भेजता है और बुद्धि हर बार उसी प्रकार के विचार को स्वीकार कर लेती है, तो कुछ समय उपरांत मन उस प्रकार के विचार को स्वीकृति के लिए बुद्धि के पास भेजना बंद कर देता है। मन ऐसा मान लेता है कि बुद्धि उसके पक्ष में ही निर्णय लेगी और विचार को इन्द्रियों द्वारा कार्यान्वित करवाने के पक्ष में ही होगी। मन ऐसे में बुद्धि के परामर्श के बिना ही इन्द्रियों को विचार (भाव, इच्छा) को कार्यरूप देने का आदेश दे देता है। इसे ही 'स्वभाव का निर्माण' (विचारों का स्वत: निष्पादन) कहा जाता है।

मनुष्य के कर्म का परिणाम शीघ्र अथवा देर से सामने आता ही है। यह परिणाम कर्म का फल कहलाता है। यह आवश्यक नही कि कर्म का फल एक प्रकार से एक ही बार मे प्राप्त हो जाए। एक ही कर्म का फल एक से अधिक बार मे और एक से अधिक प्रकार से भी प्राप्त होता है। जैसे विद्या प्राप्ति के लिए किया कर्म, किसी के साथ मित्रता अथवा द्वेष करने वाला कर्म बार-बार भिन्न-भिन्न प्रकार से अपना परिणाम दिखाते हैं। विद्या से बुद्धि मे वृद्धि होती है। बुद्धि से अनेकों सफल कार्य किए जाते है, जैसे धन अर्जन करना और फिर उस धन के माध्यम से कई और कार्य पूर्ण होते है। इसी प्रकार किसी सज्जन से मित्रता जीवन मे अनेकों सफलताएँ दिलाती है और किसी से द्वेष बार-बार दुख प्राप्त करवाता है। किसी भी कर्म के फल के साथ एक और फल जुडा होता है और वह है संस्कार को पहले से दृढ अथवा धूमिल करना जो जीव के स्वभाव मे अंतर लाता है। मोटे रूप मे हम कह सकते है कि हर कर्म के ये निम्न तीन फल भी होते है:-

१. मन पर पडा प्रभाव (संस्कार)
२. बुद्धि पर पडा प्रभाव
३. दुख अथवा सुख जो भौतिक हानि या लाभ रूप अथवा ज्ञान रूप मे प्राप्त हुआ

अच्छे (सुख) या बुरे (दुख) फल का उत्तरदायी एक और कर्म भी होता है। यह वह कर्म है जिसके कारण बुद्धि अच्छी (विकसित) अथवा बुरी (अविकसित) हुई कि उसने मन को वह कर्म करने कि अनुमति दी। इस प्रकार एक कर्म के उत्तरदायी दो कर्म हुए:-

क) जिसके कारण यह संस्कार पडा कि ऐसा भाव मन मे उत्पन्न हुआ
ख) जिसके कारण बुद्धि ऐसी बनी कि उसने अमुक कर्म की अनुमति दी

हमारे कर्मों का प्रभाव संस्कार के रूप में हमारे मन पर पड़ता है जो पहले के प्रभावों (संस्कारों) को दृढ अथवा शिथिल करता है। बार-बार एक जैसे किए गए कर्मों से हमारा स्वभाव बनता है। वर्तमान में प्रचिलित भाषा में स्वभाव को 'आदत' भी कहा जाता है। किसी व्यक्ति के स्वभाव के अध्ययन से हम समझ सकते हैं कि वह व्यक्ति भूतकाल में कैसे कर्म करता रहा है (बुद्धि या तो व्यक्ति के कर्म के मूल के विचारों को सदैव अनुमति देती रही है अथवा मन बुद्धि के परामर्श के बिना ही विचारों को कार्यरूप देता रहा है)। स्वभाव का अध्ययन हमें बता देगा कि व्यक्ति वर्तमान व भविष्य में कैसे कर्मों को करने वाला होगा। स्वभाव में परिवर्तन अथक प्रयासों के पश्चात ही आता है जिसके लिए बुद्धि का विकसित होना अनिवार्य है।

हम न भूलें कि

- सुख व दुख मन की मान्यताऐं हैं। यदि वैसा हो जावे जैसा मन चाहता है तो मन उसमे आनन्द अनुभव करता है और वह उसकी सुख की मान्यता है और इसके विपरीत यदि परिणाम उसके अनुकूल न हो तो उसे कष्ट होता है और यह मन की दुख की मान्यता है।
- हर व्यक्ति की मान्यताऐं उसके ज्ञानानुसार हैं।
- कर्म के परिणाम (फल) के रूप मे हमे प्राप्त हो सकते हैं
    - दुख का नहीं मिलाना
    - दुख दूर करने मे सफलता
    - दुख की ही प्राप्ति
    - किसी नए कर्म को करने की आवश्यकता
    - किसी नए कर्म करने का साधन
- मनुष्य का स्वभाव उसके संस्कारों व कर्मों से बनता है।

Whenever the mind sends the same type of thoughts to the intellect for approval and the intellect accepts this every time, then the mind stops sending that type of thought to the intellect for approval. The mind assumes that the intellect will decide in its favor and will allow the mind to get the thought implemented through the 'indriy'. When the mind, without consulting the intellect, gives orders to the 'indriy' to act on the thought is called the creation of 'swabhāv' (the automatic execution of ideas).

The result of human deeds comes sooner or later in the form of 'karm-phal'. It is not necessary that the 'karm-phal' is attained in one particular way at a time. The result of a deed can be obtained more than once and in different ways. For example, the act of acquiring knowledge, friendship with someone or hatred towards someone show their results again and again in different ways. Wisdom increases with knowledge. Many successful accomplishments are achieved through intelligence like earning money and then many more tasks materialize with this money. Similarly, friendship with a gentle person brings many successes in life whereas hatred for someone gives you repeated sorrow. One more outcome is associated with every 'karm-phal' of any deed is either to strengthen or tarnish the previous sanskār, which brings a change in the nature (swabhāv) of the person. In general, we can say that every action has the following three results also:-

1. effect on the mind (sanskār)
2. effect on intelligence
3. suffering or pleasure received in the form of material loss or gain or knowledge

There is another karm responsible for good (happiness) or bad (sorrow) results that which made the intellect good (developed) or bad (undeveloped) and allowed the mind to get the thought converted into action. In this way two 'karm' were responsible for one action:-

a) due to which an impression was made that such a thought was born in the mind.
b) due to which the intellect became such that it allowed the mind for execution of the thought.

The effect of our actions influence our mind in the form of sanskārs which strengthen or weaken the earlier impressions (sanskārs). Our nature (swabhāv) is formed by repeated actions of the same kind. In common language, 'habit' is also used to define nature of a person. By studying the nature of a person we can understand how that person has been acting in the past (either the intellect has always allowed the mind to get thoughts converted into actions or the mind has been acting without consulting the intellect). Studying the nature of a person will also inform us how a person would act in the present and future. Change in nature comes only after tireless efforts, for which a developed intellect is essential.

Let us not forget that

- Happiness and sorrow are the beliefs of the mind. The mind feels happy if the things work out the way, the mind wants them to be. This, is mind's recognition of joy and happiness. On the contrary, if the result is not according to the working of the mind then it hurts and this, is recognized as sorrow by the mind.
- Every person's beliefs are according to his knowledge.
- We can get the result of karm in the form of
    - no suffering
    - success in removing suffering
    - the realization of new suffering
    - the need to do a new karm
    - the means of doing a new karm
- A person's nature (swabhāv) is formed by his sanskārs and karms.

www.humnaabhooleen.com